अपराध बोध

कहानी - शरोवन

जीवन में चौथी बार मैं कोट-पैंट और टाई बांधकर बस स्टैंड के सामने बने हुये एक केन्टीन में बैठा हुआ चाय की चुस्कियों के सहारे बस के आने का इंतज़ार कर रहा था। यूं भी मुझे सूट

पहनने का शौक कभी भी नहीं रहा है। अब तक केवल तीन बार ही मैंने सूट पहने थे। वह भी मजबूरी में: पहली बार अपने विवाह के समय पर, दूसरी बार भाई के विवाह पर और तीसरी बार अपनी मां के दफन के समय पर। संयोग की बात थी कि इस बार भी मैं सूट पहन कर किसी के अंतिम संस्कार में शामिल होने जा रहा था। हमारे एक गुरू जी थे, जिन्होंने मुझे कभी कॉलेज में वनस्पति विज्ञान की कक्षा में पढ़ाया था। सेवा-निवृत्ति के पश्चात वे मेरे ही शहर में आकर रहने लगे थे। वे सुबह-सुबह प्रात: अपनी सेहत के लिये टहलने जाते थे। मेरी भी यही आदत थी। सो अचानक से एक दिन प्रात: के समय टहलते हुये मेरी उनसे मुलाकात हुई तो वे मुझे देखकर बेहद हर्ष से आनन्दित हो गये। उस समय बहुत सारी बातें हो गई थीं। ज्यादातर बातों का विषय हमारे कॉलेज के दिनों की स्मृतियां और दूसरे अन्य साथियों के बारे में जानकारियों की थी। फिर उस मुलाकात के बाद तो अक्सर ही वे मुझे मिल जाया करते थे। कभी बाजार में, बस स्टैंड पर और कभी सब्जी मंडी में। बाद में उनके पुत्र ने अपना नया मकान मेरे शहर से एक दूसरे कस्बे में लगभग तीस मिनट की बस यात्रा की दूरी पर बनवा लिया तो गुरू जी अपने लड़के के पास जाकर रहने लगे थे। दूसरे शहर में उनके चले जाने पर भी मैं जब भी वहां जाता था तो उनसे मिले बगैर कभी भी वापस नहीं आता था। पता नहीं उनसे गुरू और चेले का कौन सा सख्त बंधन जुड़ गया था कि मैं उन्हें अपने विशेष संबधियों में जोड़ने लगा था। जब कि

कॉलेज के दिनों की हकीकत यह थी कि मैं उन दिनों उनसे बहुत कतराने लगा था। वे मुझे तब अच्छे भी नहीं लगते थे।

मैं अभी भी बैठा हुआ, कैन्टीन में आने वाले दैनिक अख़बार के पेज पलट रहा था। उसमें कोई विशेष खबर भी नहीं थी, सिवाय इसके कि कहीं धमाके हो गये, फलांनी जगह इतने मर गये, आंतकियों ने यह किया, वह किया, या फिर पेट्रोल के दाम आसमान पर आदि...। बस अभी भी नहीं आई थी। मन में मेरे अभी भी मेरे गुरू जी की भूली-बिसरी स्मृतियां आकर दखल-अंदाजी कर जाती थीं। बार-बार मेरी दृष्टि सड़क के उस तरफ उठ जाती थी, जिस से मेरी बस को आना था। फिर सहसा ही मैंने सामने नज़र उठाकर देखा तो एक अभ्रद से, आंखों पर काला चश्मा लगाये किसी आगन्तुक को अपने सामने खड़ा देखकर चौंक गया। मुझे और भी आश्चर्य तब हुआ जब कि वह मेरे सामने ही मुझे देखते हुये एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। मैंने उसे क्षणिक देर के लिये नज़र-अंदाज किया और फिर से बे-मन से अख़बार को

देखने लगा। उस युवक ने बैठे हुये चाय का आर्डर दिया तो मेरी तरफ देखकर वह बोला,

"आप भी चाय पियेंगे, शरोवन जी?''

"?"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मेरी धमनियों में जैसे अचानक ही बहता हुआ खून जम चुका था। इस आदमी को मेरा नाम कैसे मालुम है? वह मुझे किस प्रकार से जानता है? कभी देखा नहीं, मैं इससे कभी भी मिला नहीं, फिर भी यह आदमी मुझे भली-भांति जानता है; ऐसा मुझे लगा तो मैं एक संशय के साथ आश्चर्य से उसका चेहरा घूरने लगा। मेरी परेशानी समझ कर वह आदमी एक हल्की सी मुस्कान अपने चेहरे पर बिखेरते हुये मुझसे पुन: संबोधित हुआ। बोला,

"आप विला बज़ह परेशान मत होइये। आप स्टेट बैंक में काम करने वाले एक मात्र मसीही युवक हैं, फिर आपको कौन नहीं जानता होगा?''

तब उसकी इस बात पर मैं थोड़ा सा सामान्य हुआ। सोचा, चलो मेरी परेशानी तो इसने हल कर दी। तभी उसके लिये कैन्टीन का लड़का चाय

बनाकर रख गया और साथ ही दो समोसे भी तो उन्हें देखते हुये वह युवक मुझसे फिर बोला,
"आप चाय पियें तो मैं मंगवा दू?''
"नहीं। धन्यवाद। मैंने अभी-अभी ही तो चाय पी है।" मैंने कहा तो उसने आगे बोला,
"चलिये चाय नहीं तो कम से कम एक समोसा तो शेअर कर ही लीजिये।" कहते हुये उसने अपना समोसा उठा लिया और प्लेट मेरी तरफ बढ़ा दी तो मैं सहज ही चुप हो गया। उसके बाद मैं कुछेक क्षणों तक चुप बना रहा। बस अभी तक आने का नाम नहीं ले रही थी, और साथ में ये आगुन्तक भी मुझसे जैसे चिपक गया था। मैं अपने आप में ही झुंझलाने लगा था।

'मेरा नाम विंध्याचल कुलकर्णी है, और मुझे आपसे एक विशेष बात करके सलाह लेनी है।'

उस आदमी ने अपना नाम बताकर अपना परिचय दिया और विशेष बात करनी चाही तो मेरे कान फिर से खड़े हो गये। सोचा, इस नाम के शक्स की तलाश तो मैंने कई महीनों तक तब की

थी जब कि मैं फरूख़ाबाद के क्रिश्चियन इंटर कॉलेज में हाई- स्कूल में पढ़ा करता था। अगर वह मुझे तब मिल जाता तो शायद मैं अब तक तो जेल की सज़ा काटकर वापस भी आ चुका होता। ऐसा सोचकर मैंने उस आदमी को एक बार फिर से आंखें गड़ा कर देखा। पहचानने की कोशिश की। फिर अपने आप ही निर्णय लिया; यह वह नहीं हो सकता है। एक नाम के दो तो क्या कई लोग भी तो हो सकते हैं। फिर जिसको मैंने ढूंढ़ना चाहा था वह तो उस समय बहुत ही इकहरे बदन का कभी भी ना मुस्कराने वाला, बेहद गंभीर और चुप सा, पर निहायत ही बिगड़ैल किस्म का लड़का था। और यह आदमी देखने से सामान्य और सभ्य दिखाई देता है। बात अब से पच्चीस साल पुरानी हो चुकी थी, लेकिन फिर भी उस बिगड़ैल लड़के के प्रति मेरे मन से प्रतिशोध की ज्वाला समाप्त नहीं हो सकी थी। जब भी मैं उसे याद करता था तो मेरे तन-बदन में शोले धड़कने लगते थे। और आज इस आदमी ने फिर एक बार मेरी झुलसी हुई

स्मृतियों पर पेट्रोल छिड़क दिया था। लेकिन फिर भी इतना सब कुछ सोचने के पश्चात भी एक संशय से मैंने उसे फिर से देखा और पूछा कि,

'कहिये क्या कहना चाहते हैं आप?'

'यहां नहीं। किसी दूसरी जगह पर। मुझे आपके मसीही धर्म के विषय में पश्चाताप के विषय में बात करनी है।'

'लेकिन, मैं कोई पादरी तो नहीं जो आपको सही ढंग से और विस्तार से समझा सकूंगा। मैं ईसाई जरूर हूं। वह भी इसलिये कि एक मसीही परिवार में जन्म लिया है। मैं तो कभी चर्च भी नहीं जाता हूं। बेहतर होगा कि आप किसी पादरी, प्रीस्ट या फिर चर्च के प्राचीन से बात करें।'

मैंने उसे टालना चाहा तो उसने अपनी विवशता बताई। वह बोला,

'मैं पश्चाताप करना चाहता हूं। आप तो जानते ही हैं कि पश्चाताप मन और आत्मा का किया गया फैसला होता है। मैं विश्वास करता हूं कि पश्चाताप करने के लिये आवश्यक नहीं है कि

कोई धार्मिक पंडित, पुजारी या फिर कोई पादरी या प्रीस्ट ही हो। किसी भी सच्चे इंसान को सामने साक्षी बनाकर और अपने ईश्वर की उपस्थिति को महसूस करते हुये यह कार्य सहज ही किया जा सकता है।'

उस आदमी ने कहा तो मैंने देखा कि उसकी आंखें न जाने क्यों गीली होने लगी थीं? सचमुच उसके मन में अपने किये गये किसी गलत काम के वह एहसास थे जो उसे धीरे-धीरे गला रहे थे।

'क्या किया है आपने? क्यों पश्चाताप करना चाहते हैं आप?' मैंने उसकी मनोदशा को महसूस करते हुये उससे पूछा तो वह तुरन्त ही बोला,

'यहां रहने दीजिये। किसी एकांत स्थान में यह बात हो तो अधिक अच्छा रहेगा। आप जहां कहें मैं वहीं आ जाऊंगा। चाहें तो मैं आपके घर भी आ सकता हूं। लेकिन अपने अपराध की बात मैं केवल पश्चाताप करते समय ही बताऊंगा।'

तभी मैंने अपनी बस को आते देखा तो उसकी बात का उत्तर दिये बगैर उस मनुष्य को मैंने तुरन्त ही अपना कार्ड निकाल कर दिया और कहा कि,

'देखिये मेरी बस आ गई है। आप मेरी विवशता को समझ सकते हैं। यह मेरा कार्ड है। आप मुझे कल या आज शाम को इसी नंबर पर फोन करियेगा।' कह कर मैं जल्दी से अपनी बस की तरफ चलने लगा।

गुरू जी की अंत्येष्टि में पूरी श्रृद्धा के साथ हिस्सा लिया। फिर बाद में उनको अपना अंतिम नमस्कार करके उदास और भारी मन से वापस हो लिया। हांलाकि उनके जाने का बहुत दुख मुझको था पर यही सोच कर सन्तोष कर लिया कि मृत्यु तो जीवन का ही एक भाग है। बगैर इसके पूरा हुये मानव जीवन की सांसारिक यात्रा पूरी भी नहीं होती है। अपना एक अच्छा जीवन व्यतीत करके गुरू जी सांसारिक रीति पर कूच कर गये थे। शायद इंसान का इस दुनियां में जन्म लेने का यही एक अंतिम हश्र रह जाता है। जिस मिट्टी से

इंसान की सृष्टि की गई थी, उसमें ही उसको एक दिन मिल जाना होता है। और परमेश्वर की दी हुई सांसों की आत्मा वापस परमेश्वर के पास ही लौट जानी होती है। बस में बैठ कर वापस आते समय गुरू जी की ऐसी ही ना जाने कितनी स्मृतियां तो साथ दे ही रही थीं, पर साथ में सुबह की हुई घटना में एक अजनबी से हुई वह भेंट भी शामिल थी, जिसमें बीती हुई कड़वी यादों में कुलकर्णी और रश्मि की यादों के भूले हुये वे अवशेष जो आज भी मेरे मानस पटल पर जैसे कभी भी न उखड़ने वाले पत्थरों समान गड़े हुये थे। इन सब बातों ने मानों मुझ में हजार ठोकरें एक साथ लगा दी थीं। बार-बार मेरे दिमाग में आज से पच्चीस साल पुरानी वे घटनायें आकर मुझे झकझोर जाती थीं जिनके सबब से कभी मैंने एक बहुत ख़तरनाक निर्णय लेने का वसीला कर लिया था। घर तक आने का रास्ते का सफर केवल तीस मिनट का ही था। पर सोचों और विचारों में ये तीस मिनट कब व्यतीत हो गये, पता तब चला जब बस आकर बस स्टैंड

पर फिर से आकर खड़ी हो गई। मैं चुपचाप नीचे उतरा और अपना बैग पकड़कर पैदल ही घर की तरफ चल दिया।

घर आया तो दिन के दो बज रहे थे। इस समय ना तो मेरी पत्नि आशा ही थी और ना ही मेरी बेटी महुआ। ज़ाहिर था कि दोनों ही स्कूल में थे। उनके आने में लगभग दो घंटे शेष थे। सारा अकेला घर किसी पर कटे हुये पंछी के समान मुझे असहाय सा नज़र आया। हांलाकि मेरी पत्नि सब कुछ ठीक, हरेक वस्तु करीने से लगाकर गई थी। यह उसकी रोजाना की दिनचर्या में शामिल था। चूंकि मैं अपने काम से पहले आता था, इसलिये आशा मेरा दोपहर का खाना प्लेट में निकाल कर रेफरीजरेटर में रख जाती थी। मेरा केवल इतना ही काम होता था कि में खाना निकाल कर माइक्रोवन में गर्म करूं और खा लूं। पानी का भरा हुआ गिलास भी रेफरीजरेटर में वह रख जाती थी। लेकिन आज ना तो उसने मेरा खाना ही रखा था और ना ही पानी का कोई गिलास मुझे

रेफरीजरेटर में नज़र आया। यूं मुझे वैसे भी कुछ खाने की इच्छा नहीं थी। बाथरूम में गया और स्नान किया। गुरूजी की अंत्येष्टि के समय पर पहने हुये सारे कपड़े उतारकर एक तरफ बाथरूम में फेंके। स्नान किया और फिर तरो-ताज़ा होकर सोफे पर आराम से बैठ गया। टी. वी. खोलने की कोई इच्छा भी नहीं हुई। फिर अचानक से बैठे-बैठे सुबह की घटना में मिले आगन्तुक, जिसने अपना नाम विंध्याचल कुलकर्णी बताया था, बगैर बात के मेरे मस्तिष्क के द्वार पर अपनी दस्तक देने लगा। ध्यान आया तो सहसा ही उठा और स्टील की अलमारी में अपना वर्षो पुराना एलबम किसी तरह ढूंढ़ कर निकाल लिया। सोफे पर फिर से बैठा और खोल कर तस्वीरों को देखते हुये बीते हुये अतीत के बादलों की धुंध में उन सब से बातें करने लगा जो कभी मेरे सहकर्मी मित्र और सहपाठी थे। फिर अचानक से हाई स्कूल की कक्षा की समूह फोटो सामने आई तो मेरी थकी हुई दृष्टि स्वत: ही रश्मि की हल्के से मुस्कराती हुई फोटो पर जाकर

ठहर गई। कितनी साधारण और शालीन थी रश्मि तब। कितनी मिलनसार पर सबसे अधिक ज़िद्दी भी। हांलाकि मेरा उससे कोई भी व्यक्तिगत रिश्ता नहीं था। जो रिश्ता उससे मेरा जुड़ता था वह यही कि हम दोनों एक ही कक्षा में बैठा करते थे। और दूसरा था मसीहियत का। तब उन दिनों उसके तमाम सारे हालात और परिस्थतियां देखते हुये मैंने उसे समझाया भी था। वह जिन रास्तों पर जा रही थी उनका अंजाम केवल बुरा ही होना था। मैं इस बात को बखूबी जानता भी था। तब एक दिन आधी छुट्टी के समय मैंने उसे देखा तो वह कॉलेज की गैलरी की सीढ़ियों पर अकेली गुमसुम बैठी हुई किसी का इंतजार कर रही थी। मैं जानता था कि वह किसकी प्रतीक्षा में अपनी आंखें बिछाये हुये थी। लेकिन मैंने उसे ज़ाहिर नहीं होने दिया। उसके पास जाकर उसी के सामने चुपचाप खड़ा हो गया तो वह मुझे यूं अचानक से आया देखकर चौंक गई। फिर सामान्य होने की कोशिश करते हुये मेरी तरफ देख कर बोली,

'आप? आपने तो मुझे डरा ही दिया था।'

'नहीं ऐसी कोई भी बात नहीं है। मैं आपसे कुछ कहने ही आया था।'

'मुझसे ?' वह पहले से और भी अधिक चौंक गई।

'हां, आपसे ही।'

'?'

मेरी इस बात पर उसने अपने आस-पास चारों तरफ देखा, फिर तुरन्त ही अपने स्थान पर खड़ी होते हुये मेरी तरफ एक संशय से देखते हुये बोली,

'कहिये। क्या कहना चाहते हैं?'

'सहपाठी और हम मसीही होने के नाते ही मैं इतना साहस कर सका हूं कि आपको पहले ही से चिता दूं।'

'किस बात के लिये?' रश्मि की पुतलियां फैल गईं तो मैंने कहा कि,

'आप अपनी उम्र के जिस दौर में हैं, उसके दायरे में बहुत सारे जलते हुये सूरज भी हैं। उनसे बच के रहियेगा।' मैंने कहा तो वह गंभीरता से बोली,

'यदि आप अच्छे सुधरे हुये संवाद बना सकते हैं तो इसका आशय यह नहीं है कि मैं उनका मतलब सहज ही समझ जाऊंगी। सीधी तरह से बताइये कि आप कहना क्या चाहते हैं?'

'जिस मार्ग पर आप जा रहीं हैं वह आपको उस जगह भी ले जा सकता है, जहां पर एक दिन जीने के सारे साधन समाप्त हो जाते हैं।'

'मिस्टर शरोवन जी? आप मुझे बहलाना चाहते हैं?' रश्मि ने अपनी आंखें बड़ी कीं तो मैंने कहा,

'आपने मुझे गलत समझा है।'

'तो फिर आप ही बता दें कि सही क्या हो सकता है?'

'आपसे गुज़ारिश है कि वापस आ जाइये। कोई दूसरा अच्छा मार्ग और अच्छा साथी भी समय पर मिल ही जायेगा।'

'रास्ता तो एक ही होता है। बहुत सारे लोग साथ चला करते हैं, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि मैं हर किसी का हाथ पकड़ लूंगी?'

‘जिसका हाथ पकड़कर आप चल रही हैं वह अच्छा लड़का नहीं है।’

‘प्यार अंधा होता है।’

'आप एक मसीही लड़की हैं। मैं भी मसीही हूं। हम दोनों एक ही कक्षा के सहपाठी भी हैं। शायद इसी नाते से मैं आपको आगाह कर देना चाहता हूं कि कुलकर्णी एक गैर मसीही लड़का है और उसके चाल-चलन बहुत अच्छे नहीं हैं।’

‘ आपने बताने में बहुत देर कर दी है।’

‘अभी भी समय है। वापस आ सकती हैं आप।’

‘आज प्रेम-पथ के जिस स्थान पर मैं खड़ी हूं वहां से कोई भी वापसी की राह नहीं जाती है। मैंने बहुत सोच समझ कर अपने जीवन का फैसला किया है।’

‘मेरी राय है कि, जो कुछ भी आपने करने की ठान ली है, उसके बारे में एक बार फिर आयने के सामने जाकर खुद से पूछ लें कि वह समाज और धर्म, मानवता और कानून; सब तरह से कहां तक सही हो सकता है? आप एक भले परिवार की

पहलौठी संतान हैं। साथ ही आपके ऊपर आपके मां-बाप और दो छोटे भाई-बहनों के सुखी भविष्य की वह छतें टिकी हुई हैं, जिन्हें केवल आप ही मजबूत बना सकती हैं। अपने घर की दहलीज़ से कदम बाहर निकालने से पहले इतना जरूर सोच लेना।'

रश्मि ने मेरी बात मानी या ना मानी। मैं उससे कह-सुनकर चला आया। बाद में मैंने फिर उससे कुछ भी नहीं कहा। सोच लिया था कि पानी रश्मि के सिर के ऊपर से बहने लगा है। अब कुछ भी नहीं होने वाला है। कुलकर्णी से विवाह करके उसका घर बस जाता है। वह खुश रहती है तो भी कुछ इतना बुरा नहीं है कि जिसे हज़म न किया जा सके। रही बात धार्मिक विश्वास की तो यह सबका अपना व्यक्तिगत् विश्वास और निर्णय होता है। किसी को मिट्टी के कण-कण में ईश्वर नजर आते हैं तो किसी को आसमान के बादलों की सफेदियों में परमेश्वर का अक्श दिखाई देता है। मैंने भी खुद को समझाना आरंभ कर लिया था।

जिसका मैं चाहकर भी कोई भला नहीं कर सकता हूं, बेहतर होगा उस बारे में भूल ही जाऊं। एक प्रकार से मैं किसी हद तक भूलने भी लगा था। पर एक दिन अचानक से पता तब चला जब कॉलेज का आख़िरी सालाना परीक्षा का पर्चा देकर मैं जब अपने हॉस्टल के कमरे पर आया तो सुनने में आया कि रश्मि अपने घर से गायब है। कोई कहता था कि वह कुलकर्णी से विवाह करके उसके घर चली गई है। तो कोई कह रहा था कि उसे अगुवा कर लिया गया है। काफी दिनों तक उसके बारे में इसी प्रकार की बातें और खबरें सुनने को मिलती रहीं। लेकिन हकीकत में रश्मि का क्या हुआ था? इसे कोई भी नहीं जानता था। हां इतना अवश्य ही सच था कि रश्मि गायब थी तो गायब कुलकर्णी भी था।

बाद में कॉलेज गर्मी की छुट्टियों में बंद हुये तो हॉस्टल भी बंद हो गया। मैं अपना बोरिया-बिस्तर बांधकर अपने घर शिकोहाबाद आ गया। फिर घर की हवाओं के साथ मौज-मस्ती और बे-

फिकरी में छुट्टियां कब समाप्त हो गई कुछ पता ही नहीं चला। जुलाई का महीना आया और बरसात की पहली फुहार के साथ ही कॉलेज फिर से खुल गये। मैं अपना सामान समेटकर आगे की पढ़ाई के लिये फिर से फर्रूख़ाबाद आ गया। एक बार फिर से वही महौल और जगह मेरे सामने थी। हॉस्टल के वही नियम और दीवारें एक बार फिर मेरा वहां की हवाओं में अगले दो वर्षों तक सांस लेने के लिये पहले ही से स्वागत कर रही थीं। वही कॉलेज, वही उसका खेलने का मैदान और वही दीवारें मेरे सामने थीं। सब कुछ वही था। अगर किसी वस्तु की कमी मुझे नज़र आती थी वह थी रश्मि के चलने की वे आहटें जिनके पदचाप से कभी मेरे कान खुद ही खड़े हो जाते थे। अब ना तो वह थी और ना ही उसके परिवार का कोई भी जन। पिछले वर्ष की उस अनहोनी सी घटना के बाद उसके मां बाप इस शहर को छोड़कर अपने गांव चले गये थे। इसके साथ ही मुझे यह भी सुनने में आया था कि कुलकर्णी ने रश्मि से अपना कोई भी

विवाह नहीं किया था। वह उसको अपने प्यार के छल में बहला-फुसलाकर विवाह करने का बहाना बनाकर किसी दूसरे शहर में ले गया था और उसको किसी वेश्यालय के चकलाघर में बेच आया था। लड़कियों के साथ प्यार का नाटक करना, उन्हें अपने जाल में फंसाना और फिर उनकी खरीद-फरोख्त करना--उसका बहुत पुराना धंधा। मेरा इस बात पर विश्वास ना करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। कुलकर्णी के बारे में ऐसी कई बातें मैं पिछले वर्ष पहले ही सुन चुका था। शायद इसी भय से मैंने कभी रश्मि को समझाना भी चाहा था। लेकिन हुआ वही जो मैं नहीं होने देना चाहता था।

रश्मि के इतने बुरे हश्र के बारे में सुनकर मेरे शरीर का सारा रक्त ही ख़ौलने लगा। सोचने लगा था कि मुझे जहां कहीं भी कुलकर्णी नज़र आया वहीं उसका गला दबा दूंगा। नहीं तो सरे-आम गोली मार दूंगा। ऐसे भेडिये को सभ्य समाज में जिंदा रहने का कोई भी हक नहीं है।

परमेश्वर उसको सज़ा दे या न दे, पर मेरे प्रतिशोध की अग्नि से वह अब नहीं बच सकेगा। ज़हरीली और ख़ूनी भावनाओं का तूफान मेरे सिर पर नाचने लगा था। मैंने अपनी पॉकेट मनी के पैसे जमा करने शुरू कर दिये और फिर उनके द्वारा एक दिन देसी पिस्तौल को खरीदा और चुपचाप से हर समय उसको अपनी पैंट की बेल्ट में दबाये रखने लगा। मैं हमेशा से अपनी कमीज़ को पैंट के अन्दर रखने का आदी था, पर मन में किसी के खून की प्यास के कारण अब मेरी कमीज़ पैंट के बाहर रहने लगी थी। इस प्रकार कुलकर्णी की तलाश में एक वर्ष बीत गया। मैं ग्यारवीं कक्षा पास करके बारहवीं में आ गया। लेकिन कुलकर्णी की तलाश मैंने करना बंद नहीं की। जिस शहर में उसने रश्मि को बेचा था उस शहर के चकलाघरों और वेश्यालयों के सारे चप्पे-चप्पे तक की मैंने ख़ाक छान ली थी। रश्मि से केवल एक बार मिलने की हसरतों ने मुझे तवायफों और चकलाघरों के दरवाज़े तक

खटखटानें पर मजबूर कर दिया। मगर ना तो मुझे कुलकर्णी ही मिला और ना ही कहीं रश्मि की झलक तक देखने को मिली। मेरे इस मिशन ने मुझे बदले की भावनाओं के भीषण प्रपात ने मुझे जैसे पागल बना दिया। लेकिन जब मुझे कहीं भी सफलता नज़र नहीं आई तो मैं निराश होने लगा। मैं निराश तो हुआ पर मैंने हार नहीं मानी। अपनी ज़िन्दगी के तमाम उलझते हुये आयामों और कुलकर्णी तथा रश्मि की तलाश के कारणों में हताशा हासिल करने पर मैंने अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य भी खो दिया। नतीज़ा ये हुआ कि जो मैं बनना चाहता था वह बन नहीं सका। बस इतना अच्छा जरूर हुआ कि ज़िन्दगी की रोटी कमाने का आधार आसानी से मिल गया। सरकारी नौकरी मिल गई तो उसके सहारे रोज़ाना की दिन-चर्या जैसे एक ही स्थान और एक ही रवैये पर आकर स्थगित हो गई। नौकरी जाना और फिर घर आना। फिर एक दिन पिता का देहांत हो गया। जीवन में पहली बार मैंने किसी को मरते

देखा तो मानव जीवन का वास्तविक हश्र समझ में आ गया। सोचने लगा कि किसके लिये इंसान इस दुनियां में जन्म लेता है और किस कारण वह जीने के तमाम साधन प्राप्त करने की कोशिशों में अपने शरीर का ख़ून ख़ारे पानी में तब्दील करता रहता है। जीवन के इस वास्तविक मर्म की सच्चाई को जाना तो जीने की सारी इच्छायें मृत अभिलाषाओं की गठरी बांधकर दफन होने का प्रयास करने लगी। कुछ मिलना-मिलाना नहीं है। प्रयास करना बेकार है; ऐसा सोचकर रश्मि की तस्वीर के साथ ख़ूनी रिवॉल्वर को मैंने अपनी मेज़ की दराज़ में रख दिया। दराज़ में इस कारण रखा ताकि जब भी खोलूं तो अपने सख्त इरादों को कभी भी भूल न सकूं। तब किसी तरह जीवन के दिन हर रोज़ की हवाओं के साथ सरकने लगे। फिर एक दिन संयोग से विवाह हो गया तो आशा मेरी पत्नी के रूप में मेरी भावनाओं से जुड़ गई। मैं अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्य और उत्तरदायित्वों के प्रति सजग हो गया। और जब

प्यारी सी, अपनी आंखों में एक विशेष सीलन रखने वाली मेरी बेटी महुआ आई तो तकदीर ने उसका चेहरा देख कर जीवन जीने के सारे आयाम ही बदल दिये। पिछले पच्चीस सालों में बहुत कुछ बदला और बहुत कुछ बिगड़ा भी। रश्मि की तस्वीर और कुलकर्णी के प्रति मन में बसे हुये प्रतिशोध की ज्वाला के सारे इरादे अतीत की गहरी वादियों के धुंओं में कहां-कहां उड़ने और भटकने लगे; मैंने जानने की फिर इतनी आवश्यकता भी नहीं समझी कि मैं उसे हासिल करने के लिये कोशिशें करता रहूं। यह सोचकर तसल्ली कर ली कि कभी अगर अचानक से आमना-सामना हो गया तो तभी देखा भी जायेगा।

शाम के समय जब पत्नी के साथ बैठा चाय पी रहा था तो उसी आगुन्तक का फोन मेरे पास आया तो मैंने उसे रविवार को ग्यारह बजे आने का समय दे दिया। पत्नी ने पूछा कि फोन किसका था तो मैंने उत्तर दिया,

'एक सर-फिरे का।' मेरा ऐसा उत्तर सुनकर तब पत्नी की उत्सुकता बढ़ गई तो मुझे उसे भी सारी बात बतानी पड़ गई। सब कुछ सुनने के पश्चात पत्नी ने मुझे आगाह किया। वह बोली,

'लेकिन आप होशियार रहना।'

दो दिनों के बाद रविवार आ गया। रात देर में सोया था। सुबह भी मैं देर तक सोता रहा। आशा ने भी मुझे नहीं जगाया। यूं भी वह छुट्टी वाले दिन यदि मैं सो रहा होता हूं तो कभी भी मुझे परेशान नहीं करती है। उसका भी सोचना है कि सप्ताह के छः दिन तो वैसे भी भागम-भाग में व्यतीत होते हैं। इंसान को कम-से-कम एक दिन तो चैन मिलना ही चाहिये।

फिर जब आंख खुली तो चर्च की इबादत के लिये उसका घंटा घनघना रहा था। इबादत का यह पहला घंटा था या दूसरा? मैं जान नहीं सका। उठ कर बैठा तो पत्नी हल्के हरे रंग की छींट की साड़ी पहन कर, हाथ में बाइबल पकड़े हुये मेरे सामने

चर्च की इबादत में जाने के लिये तैयार खड़ी थी। मुझे जागता हुआ देख कर तुरन्त ही बोली,

'मैंने चाय बनाकर केटली में रख दी है। नाश्ता भी प्लेट में रखकर माइक्रोवन में रख दिया है। जरूर से गर्म करके खा लेना। वह जो आपसे मिलने आ रहे हैं, मुझे मालुम है कि उसकी बजह से आप तो चर्च जा नहीं सकेगें। अपना ध्यान रखियेगा। नहीं तो आवश्यकता हो तो पड़ौस के जीत सिंह को अपने पास बैठा लेना। ना मालुम वह कैसा व्यक्ति हो?' पत्नी ने चिंता दिखाई तो मैंने उसे तसल्ली दी। बोला,

'नहीं ऐसी घबराने की कोई बात नहीं है। मैं सब संभाल लूंगा।' कह कर मैंने पत्नी को विदा किया।

उसके जाने के बाद मैं शीघ्रता से उठा। बुरश किया और स्नान करके केटली में से चाय निकाल कर सोफे पर बैठा ही था कि अचानक से फोन की घंटी बज उठी। रिसीवर कान से लगाया ही था कि तुरन्त ही सन्देश मिल गया। कुलकर्णी

पन्द्रह मिनटों के अंतर से ही मेरे घर आ रहा था। तब मैंने अपने पड़ौस में फोन करके जीत सिंह के बारे में पता लगाया। वह चर्च में इबादत की तैयारी का सारा सामान लगाकर घर वापस आया ही था। मैंने उसे बुलाकर बताया कि कुलकर्णी नाम का एक आदमी मुझसे मिलने आ रहा है। जब वह आ जाये तो उसे मेरे घर में ले आना। जीत सिंह को समझाकर मैं अपने कमरे में कुर्सी पर बैठकर चाय पीते हुये कुलकर्णी का इंतज़ार करने लगा। फिर काफी देर की प्रतीक्षा के पश्चात जब कुलकर्णी की कोई सूचना नहीं मिली तो कुर्सी पर बैठे बैठे मुझे नींद सी आने लगी। मैं वहीं कुर्सी पर अधलेटा सा और दोनों टांगों को मेज पर पसरा कर आराम से बैठ गया और वेताल की कॉमिक्स की पत्रिका उठाकर उसके चित्र देखने लगा। वेताल की चित्र कथाओं के रूप में प्रकाशित होने वाली यह पत्रिका मेरी मनपसंद पत्रिका थी। लेकिन उसे देखना आरंभ ही किया था कि तभी बाहर से घंटी बजने की आवाज़ आई तो मैं समझ गया कि

कुलकर्णी आ चुका है। जीत सिंह को मैंने अन्दर आने को कह दिया। एक ही क्षण के बाद कुलकर्णी जीत सिंह के साथ मेरे कमरे में, मेरी लिखने-पढ़ने की मेज़ के सामने खड़ा थाः काले रंग के सूट-पेंट और लाल टाई में। बड़ा ही हताश, निराश, एक कैदी के समान और मन में पलती हुई किसी अपराध बोध की भावना को लिये हुये।

प्रारंभिक अभिवादन की औपचारिकता को पूर्ण करने के पश्चात मैंने उसे सामने ही कुर्सी पर बैठने को कहा। उसके बैठने के बाद मैंने उससे चाय के लिये पूछा तो वह बोला,

'चाय और नाश्ता तो मैं करके ही आया हूं। अगर एतराज़ न हो तो एक सिगरेट पी सकता हूं मैं आपके घर में?'

'देखिये, व्यतिगत् रूप से मुझ पर तो सिगरेट के धुंये से कोई अंतर नहीं पड़ता है। लेकिन मेरी पत्नी सिगरेट के धुंये को बर्दाश्त नहीं कर पाती है। वैसे वह अभी यहां पर नहीं है। आप चाहें तो सिगरेट पी सकते हैं।'

मेरी बात को सुनकर कुलकर्णी ने जेब से सिगरेट का पेकेट निकाला और सिगरेट हाथ में पकड़ते हुये बोला,

'कहते हैं कि सिगरेट से इंसान का कलेजा जलता है। लेकिन मेरी क्या है, मैं तो यूं भी रोज़ ही जलता रहता हूं।'

'क्यों सुलगते रहते हैं? क्या किया है आपने?' मैंने उसे गंभीरता से आंखें गड़ाते हुये एक भेदभरी दृष्टि से देखा तो वह अपना सिर नीचे झुकाते हुये बोला,

'यही तो मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि कहां से शुरू करूं? शायद आप अभी तक नहीं जान सके हैं कि मैं कौन हूं?'

'जानने की चेष्टा तो करता हूं। एक सन्देह तो है। लेकिन आप अपनी बात बढ़ायें। हो सकता है कि मैं आपकी कोई मदद कर सकूं।'

तब मेरी इस बात पर कुलकर्णी ने अपना दाहिना हाथ अपने माथे पर रखा और फिर सिर

झुकाकर नीचे सीमेंट के फर्श पर अपनी दृष्टि गड़ाता हुआ बोला,

'सन् 1967 में आप फर्रूख़ाबाद के क्रिश्चियन इंटर कॉलेज में पढ़ा करते थे और उस समय श्री ई. चरन करके कोई हमारे प्राधानाचार्य हुआ करते थे।'

'??''

सुनकर मेरे कान ऐसे खड़े हो गये जैसे कि अंधेरे में सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट पर अचानक से कोई घोड़ा ठिठक जाता है। मैं एक संशय से कुलकर्णी का चेहरा घूरने लगा। सोचने लगा, कि यह आदमी मेरे बारे में केवल कुछ नहीं बल्कि मेरे अतीत का सब ही कुछ जानता है। वर्षों पूर्व मेरी भटकी और ख़ोई हुई मंजिल का अंतिम पड़ाव मेरे सामने ही मेरे घर में बैठा हुआ है। जिस बेहूदा और कमीने मनुष्य को ज़हन्नुम रसीद करने के लिये कभी मैंने ऐड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था वही मुझको उम्र के मोड़ पर इस तरह से फिर मिलेगा? सोचकर मैं अपने फूटे नसीब की लकीरों को दोष देने लगा। जब इंसान को बदलते देर नहीं

लगती है तो फिर उसका चेहरा और शारीरिक डील-डौल बदलने में अंतर क्यों नहीं आयेगा। शायद इसी कारण मैं इसको पहली बार देखकर पहचान नहीं सका था। मैं यह सब सोच ही रहा था कि तभी कुलकर्णी ने मेरा यह सन्देह भी हकीकत में बदल दिया। वह मेरी नज़रों से अपनी नज़र क्षण भर को टकराकर आगे बोला,

'मैं समझता हूं कि वक्त और उम्र का इतना बड़ा रास्ता तय करने के बाद भी आप अभी तक रश्मि मंजीरा को नहीं भूल सके होगें। मेरी ही बज़ह से वह आज दिल्ली के मशहूर नसीरा झनक नामक इलाके में चलने वाले चकलाघर की बड़ी मालकिन है।'

'?'

कुलकर्णी के मुख से रश्मि के बारे में उसके वास्तविक हश्र का अंजाम जानकर मेरी आंखों में खून के अंगारे भभकने लगे। तुरन्त ही मैंने अपनी मेज़ की दराज़ खोली, पर न जाने क्यों मेरा हाथ अंदर पहुंचकर अचानक ही ठहर गया। मेरी इस

हरकत को देखकर कुलकर्णी मेरा मुख देखते हुये आश्चर्य से बोला,

'आपका हाथ रूक कैसे गया? निकालिये रिवॉल्वर और दाग दीजिये सारी गोलियां मेरे इस पापी और गुनहगार बदन में। मेरा यही अपराध बोध है। यही मेरी ज़िन्दगी का आख़िरी प्रायश्चित है। आप ही केवल इसे पूरा कर सकते हैं।'

'गेट आऊट। गेट आऊट फिरॉम हियर। अगर मेरे सामने मेरी बीबी और बेटी महुआ का चेहरा सामने नहीं होता तो..., तू तो वह आदमी है कि गलियों में आवारा घूमने वाले जंगली कुत्ते तक तेरा मांस खाना पसंद नहीं करेगें।'

कहते हुये मैं अपना सिर पकड़कर वहीं मेज़ पर रखकर अपनी असफलता पर मलाल करने लगा। सोचते हुये कब अतीत की गहराइयों में नीचे तक डूब गया? मुझे कुछ पता ही नहीं चला। जब आंख खुली और होश आया तो पता चला कि कुलकर्णी न जाने कब का जा चुका था और मेरी पत्नी न जाने कितनी देर की चर्च की

इबादत से आई हुई मेरा सिर हिला-हिलाकर कह रही थी कि,

'आपकी तबियत तो ठीक है न? क्या वह आदमी आया था यहां?'

मैंने सिर हिलाकर हां की तो पत्नी ने सारी कहानी विस्तार में सुनी। फिर मेरे यह कहने पर कि वह आदमी अपना प्रयश्चित करने मेरे पास आया था और मैंने उसे ख़ाली हाथ वापस कर दिया है। जब परमेश्वर ने उसे मॉफ नहीं किया तो मैं उसे क्षमादान देने वाला कौन होता हूं। जलने दो उस जाहिल को अपनी ही आग में।

मेरी बात सुनकर मेरी पत्नी मुझसे बोली,

'आप एक मसीही इंसान हैं। परमेश्वर की सेवा का काम, किताबें और मसीही साहित्य लिख-छापकर किया करते हैं। जो भी उसने किया था और जो आपके सामने हो चुका था, उसे मन से निकालकर, उसको क्षमा कर देना चाहिये था। जब आप किसी के पाप क्षमा नहीं कर सकते हैं तो आपको क्षमा किस आधार पर मिलेगी?'

आशा की बात सुनकर मैं बड़े ही घोर आश्चर्य के साथ उसका चेहरा देखने लगा। वह थोड़ी देर मेरे सामने चुप खड़ी रही। फिर बगैर कुछ भी कहे हुये दूसरे कमरे में जाकर कुछ काम करने लगी। मैं वहीं कुर्सी में धंसा हुआ सोचने लगा कि, शायद मेरी पत्नी सच ही कहती है। एक भटकी हुई आत्मा अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये एक अपराध बोध की भावना से ग्रसित मेरे सामने अपनी झोली फैलाकर मॉफी की भीख़ मांगने मेरी ही दहलीज़ पर

आई थी और मैंने उसे देने के स्थान पर उसकी झोली में सैकड़ों छेद कर दिये थे। अगर हकीकत में देखा जाये तो असली मुलजिम तो मैं ही हूं। पहला, उपरोक्त घटना को अपनी पत्नी से वर्षों तक छुपाये रहा। दूसरा रश्मि का बदला लेने के लिये अपने मन में एक ख़ूनी इरादा लिये हुये उसकी आग में एक मुद्दत से जलता रहा। जब कि बदला लेना केवल परमेश्वर का काम है। तीसरा, कुलकर्णी को अपने ही घर से खाली हाथ वापस करके, एक भटकी हुई रूह को मसीही होते हुये भी नहीं बचा सका। सोचकर मैं खुद ही एक अपराध बोध की भावना से परेशान होने लगा।

अब रश्मि के स्थान पर मेरे सामने विंध्याचल कुलकर्णी की तलाश का लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देने लगा था।

इस कहानी के बारे में आपके विचारों का स्वागत है। कृपया आप अपनी प्रतिक्रियायें निम्नलिखित पते पर भेज सकते हैं।

Yeshukepaas@comcast.net